



मसीही विश्वासियों के लिए "तीतुस" नामक बाइबल-पुस्तक का एक अध्ययन

TEETUS

First Hindi Edition : February-2008

Adapted into Hindi by : **J.P. Pandey**
Assisted by : **R.K. Khullar**

This book is based on the English title "Lessons in TITUS for Growing Believers" (Tim Mcmanigle) published by the Fellowship Bible Church, 3217, Middle Road, Winchester, VA. (U.S.A.).

Copyright © The Fellowship Bible Church,
Winchester, VA. (U.S.A.).

All rights reserved

Printed in Nepal

विषय सूची

अध्याय	पृष्ठ संख्या
एक	5-14
दो	15-21
तीन	22-27



नामक

बाइबल-पुस्तक का एक संक्षिप्त अध्ययन

तीतुस एक यूनानी व्यक्ति था जो पौलुस की सुसमाचार सेवा द्वारा मसीही विश्वासी हो गया था। यह ज्ञात नहीं है कि उससे पौलुस की प्रारम्भिक भेंट कब हुई थी। तीतुस को प्रभु की ओर लाने के बाद पौलुस ने उसे मसीही शिष्यता में प्रशिक्षित किया और तीमुथियुस की तरह उसने भी पौलुस के एक सहकर्मी के रूप में, उसके साथ यात्रा करते हुए, तत्कालीन कलीसियाओं को स्थिर करने में योगदान भी दिया। तीतुस के नाम पौलुस की पत्नी भी परमेश्वर का वचन है और सभी विश्वासियों के लिए व्यवहारिक।

“पौलुस की ओर से, जो परमेश्वर के चुने हुएों के विश्वास और सत्य के उस ज्ञान के लिए जो भक्ति के अनुसार है, परमेश्वर का दास व यीशु मसीह का प्रेरित है” (तीतुस 1:1)। यहां पौलुस स्वयं को पहिले परमेश्वर का दास कहता है, तत्पश्चात् प्रेरित अर्थात् भेजा हुआ जन। पौलुस कहता है कि परमेश्वर के दास एवं मसीह के प्रेरित के रूप में उसे परमेश्वर के चुने हुए लोगों के विश्वास को प्रेरणा, प्रोत्साहन, बढ़त तथा सत्य की सही पहचान प्रदान करने की सेवकाई मिली है जिससे उनमें ईश्वर-भक्ति विकसित हो। यही बात हमारे लिए भी लागू होती है। जैसे-जैसे हमारा विश्वास बढ़ता है, वैसे-वैसे हम परमेश्वर के वचन के ज्ञान में, वचन की शिक्षा देने में तथा वचन की सत्यता का पक्ष-समर्थन करने में आगे बढ़ते हैं और अन्ततः हममें सच्ची ईश्वर-भक्ति विकसित होती है। पौलुस ने परमेश्वर के लोगों को (परमेश्वर के) वचन की गहरी सच्चाईयां

सिखायीं। उसने विश्वासियों को वचन का सिर्फ़ दिमागी नॉलेज ही नहीं दिया बल्कि उन्हें आत्मा के अनुसार जीवन बिताना सिखाया। जब विश्वासीगण आत्मा के अधीन जीवन बिताए, तब उनका जीवन-स्वभाव मसीह की समानता में परिवर्तित होता गया।

“पौलुस की ओर से, जो परमेश्वर के चुने हुएों के विश्वास और सत्य के उस ज्ञान के लिए जो भक्ति के अनुसार है, परमेश्वर का दास व यीशु मसीह का प्रेरित है – अनन्त जीवन की उस आशा में जिसकी प्रतिज्ञा परमेश्वर ने, जो झूठ नहीं बोल सकता, अनादि काल से की है, परन्तु अब उचित समय पर उसने अपने ही वचन को उस प्रचार के द्वारा प्रकट किया, जो हमारे उद्धारकर्ता परमेश्वर की आज्ञा के अनुसार मुझे सौंपा गया था” (तीतुस 1:1-3)। परमेश्वर के वचन का सत्य अद्भुत रीति से प्रोत्साहन प्रदान करता है और पूरे मन से शिक्षा देने एवं पक्ष-समर्थन के योग्य है। केवल परमेश्वर का वचन ही किसी व्यक्ति को ‘प्रभु के स्वभाव’ (ईश्वरपरायणता) में विकसित कर सकता है। इतना ही नहीं बल्कि केवल परमेश्वर का वचन ही अनन्त जीवन की प्रतिज्ञा प्रदान करता है। अनन्त जीवन की प्रतिज्ञा सृष्टि-रचना के पहले से ही प्रभु परमेश्वर ने प्रदान की है और चूंकि वह झूठ नहीं बोलता इसलिए हमें पूर्ण भरोसा है कि हमें अनन्त जीवन प्राप्त है। इस सच्चाई को प्रभु परमेश्वर ने अपने सुसमाचार के प्रचार व शिक्षा द्वारा प्रकट किया है। उस समय इस शिक्षा को सिखाने व प्रचारित करने के लिए प्रभु परमेश्वर ने पौलुस एवं अन्य प्रेरितों को इस्तेमाल किया, तथा उनके बाद अपने दूसरे विश्वासियों के द्वारा अब तक इस सत्य को दर्शा रहा है। लोगों को हम विश्वास नहीं करा सकते, लेकिन पवित्र

आत्मा द्वारा जिनके मन तैयार किए गए हैं, उन लोगों को जब हम यह सुसमाचारीय सत्य सुनाते-समझाते हैं, तब वे विश्वास करते हैं और अनन्त जीवन पाते हैं।

“तीतुस को, जो एक ही विश्वास की सहभागिता में मेरा सच्चा पुत्र है: पिता परमेश्वर और हमारे उद्धारकर्ता मसीह यीशु की ओर से अनुग्रह और शांति मिले” (तीतुस 1:4)। तीमुथियुस की तरह तीतुस को भी पौलुस ने “विश्वास की सहभागिता में सच्चा पुत्र” कहा है। इन दोनों ने पौलुस की सुसमाचार-सेवा के माध्यम से प्रभु पर विश्वास किया था और जैसे कोई पिता अपनी संतानों को परामर्श व प्रशिक्षण प्रदान करते हुए वयस्कता की ओर ले जाता है, उसी तरह इन दोनों को संत पौलुस की ओर से सेवा, देखरेख, संगति एवं शिष्यता-प्रशिक्षण मिला था। पौलुस ने अपनी इस पत्नी को भी “अनुग्रह और शांति” की शुभकामना रूपी अभिवादन से प्रारम्भ किया जैसा कि उसने लगभग अपनी प्रत्येक पत्नी में किया है।

“मैं तुझे क्रीत में इस कारण छोड़ कर आया कि शेष बातों को सुधारे और मेरे निर्देश के अनुसार प्रत्येक नगर में प्राचीनों को नियुक्त करे” (तीतुस 1:5)। रोम के कारावास से छोड़े जाने के बाद पौलुस ने संभवतः क्रीत नामक टापू में जाकर परमेश्वर के वचन की शिक्षा दिया और उस समय तीतुस को भी अपने साथ ले गया। शायद पौलुस क्रीत में ज्यादा समय तक नहीं ठहर सका, इसीलिए अपने विश्वासनीय सहकर्मी तीतुस को वहां छोड़ गया कि वह कलीसिया स्थापना सम्बन्धी शेष (अपूर्ण) कार्य को पूरा करे – विशेषकर स्थानीय मंडली के लिए आत्मिक अगुवों (प्राचीनों) की

नियुक्ति का कार्य। तीमुथियुस और तीतुस को सम्बोधित अपनी पत्रियों में पौलुस ने उन्हें सौंपे गए सेवा-कार्य को पूरा करने के लिए प्रोत्साहित किया है तथा विश्वासियों के लिए आदेश-निर्देश दिए हैं। पहला तीमुथियुस के पांचवे अध्याय के बाईसवें पद में पौलुस ने तीमुथियुस से यह कहा है कि **प्राचीनों** (अगुवों) की नियुक्ति में जल्दबाजी नहीं करना चाहिए। इसलिए तीतुस को क्रीत में छोड़कर जाने के पीछे पौलुस की यह मंशा थी कि वह उस झुण्ड में तब तक और अधिक शिक्षा एवं अगुवाई देता रहे जब तक कि उनमें पवित्र आत्मा के चलाए चलने वाले प्राचीन नियुक्त किए जाने योग्य कुछेक विश्वासी नहीं दिखते। पौलुस ने तीमुथियुस और तीतुस की पत्रियों में **प्राचीनों** (आत्मिक अगुवों) की योग्यताओं का सुस्पष्ट वर्णन किया है। **प्रचीनों** की योग्यताओं का अध्ययन करते समय हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि **रोमियों** की पत्री के छठवें अध्याय के छठवें पद में व्यक्त सच्चाई ("हमारा पुराना मनुष्यत्व उसके साथ क्रूस पर चढ़ाया गया") को अपनाने वाले लोग ही इन योग्यताओं के अनुसार जीवन जीने की इच्छा एवं सामर्थ्य रखते हैं।

"प्राचीन निर्दोष हो, एक ही पत्नी का पति हो, तथा उसके बच्चे विश्वासी हों, दुराचारी और निरंकुश न हों" (तीतुस 1:6)। **प्राचीनों** को बिल्कुल भिन्न प्रकार के लोग होना चाहिए – मसीह जैसे स्वभाव के ऐसे स्वार्थरहित एवं चरित्रवान् सेवक जिनमें धर्मी चरित्र, पवित्रशास्त्र का ठोस ज्ञान और घर-परिवार के सुव्यवस्था रूपी गुण पाए जाते हैं। ऐसे आत्मिक अगुवे (प्राचीन) अपने चरित्र द्वारा पहचाने जाते हैं, किसी वरदान, क्षमता या योग्यता से नहीं। पौलुस ने यहां संक्षेप में **प्राचीनों** (अध्यक्ष, निगहबान या बिशप) की

योग्यताओं का वर्णन किया है। इफिसुस की कलीसिया के सम्बन्ध में तीमुथियुस को सम्बोधित अपनी पत्री में भी पौलुस ने प्राचीनों के लिए इसी प्रकार की योग्यताओं का वर्णन किया है (प०तीमु० ३:१-७, ५:२२)। ध्यान दें कि अधिकतर योग्यताएं विश्वासियों के चरित्र, आचरण या चाल-चलन से सम्बद्ध हैं, न कि नॉलेज या निपुणता से। रोचक है कि किसी व्यक्ति की जीवन-शैली एवं उसके सम्बन्ध उस व्यक्ति के जीवन में झांकने के लिए झरोखे समान होते हैं। किसी कलीसिया में प्राचीनों की नियुक्ति के लिए सम्भावित उम्मीदवारों को इन योग्यताओं के प्रकाश में जानना-पहचानना बहुत जरूरी है।

प्राचीनों की योग्यताओं की सूची में "निर्दोष" होने को पहला स्थान दिया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि प्राचीन का जीवन-व्यवहार ऐसा होना चाहिए जिस पर कोई उंगली न उठा सके अर्थात् अनिन्दनीय आचरण। यदि उस पर कोई किसी प्रकार का दोष लगाता भी है, तो उस प्राचीन का जीवन-आचरण उस दोषारोपण को झूठा ठहराएगा।

इसके बाद यह बताया गया है कि प्राचीन को "एक ही पत्नी का पति" होना चाहिए। इस बात के द्वारा स्वच्छन्द संभोग की मनाही तथा दाम्पत्य जीवन में वफादारी को बढ़ावा दिया गया है। इस वाक्यांश का तात्पर्य है : "एक ही स्त्री के प्रति वफादार पुरुष"। अर्थात् दूसरी स्त्रियों के साथ अनुचित सम्बन्ध रखने वाला नहीं, बल्कि अपनी पत्नी से संतुष्ट एवं उसके प्रति वफादार व्यक्ति (प०तीमु० ३:२)।

उसके बच्चे विश्वासी हों। किसी व्यक्ति का घर-परिवार उसकी आध्यात्मिक परिपक्वता अथवा अपरिपक्वता और अन्ततः मंडली की अगुवाई हेतु उसकी सक्षमता का परिचायक हो सकता है। किसी प्राचीन के बच्चों का आत्मिक दृष्टि से ऐसा पालन-पोषण होना चाहिए कि वे प्रभु पर विश्वास करने के इच्छुक (तत्पर) हों। इसके विपरीत किसी विश्वासी के बच्चों का विद्रोही, उदण्ड एवं अनाज्ञाकारी होना, इस बात का इशारा हो सकता है कि वह अभी मंडली के लोगों का अगुवा होने के योग्य नहीं है। कभी-कभी किसी परिवार के बच्चों की क्रिया-प्रतिक्रिया उस परिवार के मसीहियत के स्वरूप की परिचायक हो सकती है। पौलुस द्वारा इस पत्र में प्राचीन के "बच्चों के विश्वासी होने" की बात लिखना महत्वपूर्ण है, क्योंकि पहला तीमुथियुस में यह बात नहीं पायी जाती। **क्रीत** नामक टापू की इस मंडली के अधिकतर लोग कुछ ही समय पूर्व गैरयहूदी पृष्ठभूमि से मसीही हुए थे। अतएव (तीतुस के लिए) सुसमाचार के प्रति किसी विश्वासी परिवार के बच्चों की प्रतिक्रिया उस परिवार के मुखिया की आत्मिक परिपक्वता या योग्यता के आंकलन का एक माध्यम हो सकता था। किसी व्यक्ति को तब तक अगुवा पद पर नियुक्त नहीं होना था जब तक कि वह ऐसी अयोग्यताओं का प्रभावकारी समाधान नहीं करता।

"अध्यक्ष को परमेश्वर का भंडारी होने के कारण निर्दोष होना आवश्यक है; वह न तो स्वेच्छाचारी, न क्रोधी, न पियक्कड़, न मारपीट करने वाला, और न ही नीच कमाई का लोभी हो" (तीतुस 1:7)। यहां प्राचीन (बिशप, निगहबान अथवा अध्यक्ष) को "परमेश्वर का भंडारी" कहा गया है। मंडली परमेश्वर की कलीसिया

है, और यह परमेश्वर का आदेश है कि उसकी कलीसिया की देखरेख करने हेतु प्राचीनों को भंडारी समान अगुवा नियुक्त किया जाय। यहां निर्दोषता पर पुनः जोर दिया गया है जो कि ईश्वर-भक्त अगुवा का एक अनिवार्य गुण है। जो कलीसियाई अगुवे अपने आचरण के द्वारा निन्दा व बदनामी को मौका देते हैं वे परमेश्वर के कार्य को क्षति पहुंचाते हैं। मंडली की अगुवाई के प्रसंग में क्रीत के विश्वासियों के लिए पौलुस के ये निर्देश इस कारण और भी महत्वपूर्ण थे क्योंकि क्रीतवासी अपने अशोभनीय कार्य-व्यवहार के लिए बदनाम (तीतुस 1:12) थे।

आत्मिक अगुवे को **स्वेच्छाचारी** नहीं होना चाहिए। अर्थात् उसे हेकड़ीबाज, घमंडी और आत्म-प्रदर्शन करने वाला नहीं होना चाहिए। अहंकार से अगुवा पतन की गर्त में जाता है। इसलिए मसीही अगुवे के जीवन में घमंड का कोई स्थान नहीं होना चाहिए। अहंकार, घमंड एवं अहम्मन्यता ही इबलीस को पतन में ले गए (यशा0 14:12-15)। इबलीस 'अपने मन का राजा (परमेश्वर) होना चाहता था, अपने जीवन का संचालक स्वयं बनना चाहता था, और अन्य किसी की बात भी नहीं सुनना चाहता था'। अतएव प्रभु परमेश्वर ने उसे स्वर्ग से नीचे गिरा दिया, और पृथ्वी पर सर्प के माध्यम से उसने अदन की वाटिका में प्रवेश करके इसी प्रकार की मानसिकता से हव्वा को प्रलोभन-परीक्षा में डाला: "परमेश्वर तो जानता है कि जिस दिन तुम उसमें से खाओगे... परमेश्वर के समान हो जाओगे" (उत्प0 3:5)। चूंकि हम सब आदम-हव्वा के ही वंशज हैं। अतः हमें भी वही मानसिकता (स्वभाव) मिली है जो आदम-हव्वा को मिली अर्थात् इबलीस की मानसिकता। हम भी अपने मन के

राजा होना चाहते हैं और अन्य किसी की सलाह या आज्ञा नहीं मानना चाहते तथा मनमौजी जीवन बिताना चाहते हैं।

इसके अलावा **प्राचीन** को **क्रोधी** भी नहीं होना चाहिए। जिस व्यक्ति का क्रोध झटपट भड़कता है वह प्रायः बिना सोचे-समझे बोलता व कार्य-निर्णय करता है और इसके परिणामस्वरूप दूसरों को दुखित करता है तथा इस प्रकार चर्च की साक्षी पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अतः याकूब अपनी पत्री में लिखता है: *“प्रत्येक व्यक्ति सुनने के लिए तो तत्पर, बोलने में धीरजवंत और क्रोध करने में धीमा हो। क्योंकि मनुष्य का क्रोध परमेश्वर की धार्मिकता का निर्वाह नहीं कर सकता”* (1:19-20)। यदि यह बात प्रत्येक विश्वासी के लिए महत्वपूर्ण है, तो कलीसिया के अगुवों के लिए और भी महत्वपूर्ण।

इसके बाद पौलुस यह लिखता है कि मंडली के आत्मिक अगुवों को *“पियक्कड़, मारपीट करने वाला और नीच कमाई का लोभी नहीं होना”* चाहिए। तत्कालीन क्रीत की मंडली के अध्यक्षों को तलाशते समय इन तीनों बुराइयों से दूर रहने वालों की ताक में रहना महत्वपूर्ण था। चर्च के अगुवे का शराब के व्यसन और पैसे के लोभ से दूर रहना बड़ा महत्वपूर्ण है। उसे हिंसक भी नहीं होना चाहिए (प्रायः क्रोधी, शराबी या लोभी होने का परिणाम)।

“अतिथि-सत्कार करने वाला, भलाई का चाहने वाला, समझदार, न्यायप्रिय, भक्त व आत्म-संयमी हो” (तीतुस 1:8)। चर्च लीडर के लिए अवांछित अवगुणों की सूची के बाद संत पौलुस ने वांछनीय, सकारात्मक गुणों के बारे में लिखा। नया नियम काल की कलीसिया के लिए **अतिथि-सत्कार** रूपी गुण बहुत महत्वपूर्ण था।

विश्वासियों को अतिथि-सत्कार के लिए प्रोत्साहित किया गया है (तीसरा यूह0 1:4-8)। अतः कलीसिया के अगुवों को ऐसे गुण का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करना है जिससे दूसरों की सहायता व भलाई हो। इसके अतिरिक्त पौलुस यह भी लिखता है कि चर्च के आत्मिक अगुवे को "भलाई का चाहने वाला" होना चाहिए। कलीसिया के अगुवों को परमेश्वर का प्रेमी होना ही है। इसके साथ ही साथ उन्हें भली (सच्ची) शिक्षा, भले सिद्धान्त, भले लोगों तथा भले कार्यों का भी प्रेमी होना है।

चर्च के अगुवों को "समझदार, न्यायप्रिय, भक्त व आत्म-संयमी" भी होना है। गलातियों की पत्री के पांचवे अध्याय के सत्रहवें पद में यह लिखा है: "शरीर तो पवित्र आत्मा के विरोध में और पवित्र आत्मा शरीर के विरोध में लालसा करता है। वे तो एक दूसरे के विरोधी हैं"। वे क्यों एक दूसरे के विरोधी हैं? मनुष्य के प्राण (मन, इच्छा, मनोभावना) पर अपना प्रभाव एवं नियंत्रण बनाए रखने के लिए। शारीरिकता की जड़ धोखाधड़ी के सबसे बड़े उस्ताद शैतान में है। अतः शारीरिकता के अधीन जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति परमेश्वर की दृष्टि में समझदार (स्वस्थचित्त, संतुलित या शांत स्वभाव का) नहीं है (प0तीमु0 3:2)।

"वह उस विश्वासयोग्य वचन पर स्थिर रहे जो धर्मोपदेश के अनुसार है, जिससे कि वह खरी शिक्षा का उपदेश देने और विरोधियों का मुंह बन्द करने में भी समर्थ हो" (तीतुस 1:9)। ख्रीस्तीय अगुवे को पवित्र आत्मा द्वारा प्रकाशित परमेश्वर के वचन की गहन सच्चाईयों को जानने, समझने, मानने एवं सिखाने में सुदृढ़

होना अनिवार्य है। ख्रीष्तीय अगुवे को परमेश्वर के वचन की इन सच्चाईयों पर फेर-बदल किए बगैर स्थिर रहना चाहिए और इनकी महत्ता को किसी भी प्रकार से कम नहीं करना चाहिए, जैसा कि उस जमाने के झूठे शिक्षक कर रहे थे (दू0पत0 2:1-3)। आत्मिक अगुवों को उत्पीड़न या विरोध के बावजूद भी इन पवित्रशास्त्रीय सच्चाईयों पर अटल रहना है। तब कलीसिया का अगुवा "खरी शिक्षा के उपदेश देने और विरोधियों का मुंह बन्द" करके दूसरों को प्रभु-पथ पर प्रोत्साहित करने में समर्थ होगा। सत्य शिक्षा के प्रसंग में कलीसिया के प्राचीनों को दोहरी भूमिका निभानी आवश्यक है – सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रचार। कहने का मतलब यह है कि सत्य का अनुसरण करने वालों की सत्य-शिक्षा द्वारा सेवा, सहायता, सुधार एवं प्रोत्साहन प्रदान करना, तथा मंडली में झूठी शिक्षा देने का प्रयास करने वालों का सामना करते हुए गलत विचारों का विरोध करना। प्रायः झूठ व भ्रान्त को ढहाते हुए ही सत्य-शिक्षा द्वारा कलीसिया में निर्माण होता है। आत्मिक तौर से सुस्थिर तथा अटल सत्य-संदेश को अपनाने वाले आत्मिक अगुवे, झूठे शिक्षकों एवं क्रीतवासियों की अशोभनीय जीवन-शैली से बिल्कुल भिन्न होते हैं। इसीलिए चर्च अगुवों का पवित्र आत्मा एवं सत्य की अगुवाई में जीवन बिताना बहुत जरूरी है क्योंकि ऐसे लोग ही कलीसिया का आत्मिक भरण-पोषण, अगुवाई एवं समुचित देखरेख कर सकते हैं।

“तू ऐसी बातें कहा कर जो खरी शिक्षा के अनुसार हैं” (तीतुस 2:1)। अपनी इस पत्री के दूसरे अध्याय में तीतुस को पौलुस यह स्मरण कराता है कि वह केवल उन्हीं बातों को सिखाए जो सत्य (खरी) शिक्षा के अनुसार हैं। ऐसे लोग भी हैं जिनकी शिक्षा आत्मिक शिक्षा जैसी प्रतीत होती है, लेकिन परमेश्वर के वचन का विश्वसनीय संदेश नहीं होती। यह बात याद रखना हम सब के लिए महत्वपूर्ण है। केवल वही लोग “खरी (सत्य) शिक्षा के अनुसार” बातें बोलने में सक्षम होते हैं जो पवित्र आत्मा की अधीनता में जीवन व्यतीत करते हैं। इसके पश्चात् पौलुस ने कलीसिया के शेष विश्वासियों के बारे में निर्देश दिया है। सत्य (खरी) शिक्षा (सिद्धान्त) का ज्ञान एवं उस पर विश्वास सही जीवन-आचरण में अगुवाई करता है।

“वृद्ध पुरुष संयमी, सम्माननीय व समझदार हों, तथा वे विश्वास, प्रेम और धैर्य में पक्के हों” (तीतुस 2:2)। वृद्ध पुरुष किसी भी समुदाय के वरिष्ठ सदस्य होते हैं और उन्हें परिपक्वता का उदाहरण होना चाहिए। ऐसे लोगों को आत्म-संयम की शिक्षा दी जानी चाहिए। अर्थात् उन्हें असंयम एवं अपव्यय से दूर रहना है। पौलुस ने तीतुस से कहा कि इन वृद्धों को सम्माननीय व समझदारी का जीवन व्यतीत करने की शिक्षा दी जानी चाहिए (तीतुस 2:3-7)। इतना ही नहीं, क्रीत के इन नये विश्वासियों को अपने पुराने अविश्वासी जीवन शैली के अनुसार जीने के बजाय, परमेश्वर के अनुग्रह एवं पवित्र आत्मा की सामर्थ्य द्वारा अपनी अभिलाषाओं, अपने

क्रोध तथा अपनी बोली पर संयम (आत्म-नियंत्रण) रखना था। इन बुजुर्ग पुरुषों के जीवन में "गम्भीरता" होनी थी, अर्थात् विश्वास, प्रेम व धैर्य में परिपक्वता (गहराई और गम्भीरता)।

विश्वास में पक्के: मसीह में जड़ पकड़ते व बढ़ते जाना तथा उसी पर आशा-भरोसा में सुस्थिर रहना (2:7)। **प्रेम में पक्के:** यह हमारे आंतरिक जीवन में वास करने वाले खीष्ट-जीवन के द्वारा ही सम्भव है (प0कुरि0 13:4-7)। **धैर्य में पक्के:** अर्थात् स्थायी दृढ़ता (कुलु0 1:11)। यह सब हमारे जीवन-व्यवहार में तभी साकार होता है जब हम मसीह के साथ अपने पुराने मनुष्यत्व के सह-क्रूसित होने की सच्चाई को जानते, पहचानते एवं अपनाते हुए पवित्र आत्मा की अगुवाई में जीवन बिताते हैं।

वृद्ध पुरुषों द्वारा ऐसा जीवन जीने पर उनकी दृष्टि अपने अहं के बजाय खीष्ट पर तथा परमेश्वर की प्रभुता पर केन्द्रित होती है। इसके परिणामस्वरूप उनके जीवन में चिन्ता, व्याकुलता व क्रोध के स्थान पर प्रभु में विश्रान्ति का विकास होता है। इब्राहीम का जीवन इसका एक उदाहरण है। उसने हरेक परिस्थिति में प्रभु परमेश्वर पर ही आशा-भरोसा रखना सीखा। चूंकि वह अपने परमेश्वर को जानता था, इसलिए उस पर पूरा भरोसा रख सका। उसकी ढलती उम्र में जब उसे अपना घर-द्वार छोड़कर एक अज्ञात देश में जाने का ईश्वरीय आदेश मिला तब भी उसने अपने प्रभु परमेश्वर पर भरोसा किया और उसके आदेशानुसार वहां गया। इतना ही नहीं, जब उसकी वृद्धावस्था में परमेश्वर ने उसे एक पुत्र देने का वायदा किया तो उसने परमेश्वर की बात पर संदेह करने के बजाय विश्वास किया, और जब परमेश्वर ने इब्राहीम को उसी एकलौते पुत्र

को बलिदान करने का आदेश दिया तब भी इब्राहीम ने अपने परमेश्वर पर विश्वास करते हुए उसकी आज्ञा का पालन किया।

“इसी प्रकार वृद्ध स्त्रियों का चाल-चलन भी पवित्र हो। वे न तो परनिन्दक हों, न पियक्कड़, वरन् अच्छी बातें सिखाने वाली हों” (तीतुस 2 : 3)। जैसे प्रभु परमेश्वर वृद्ध पुरुषों को जवान पुरुषों के लिए ईश्वर-भक्ति के एक उदाहरण के रूप में इस्तेमाल करना चाहता है, उसी तरह वृद्ध स्त्रियों को युवा स्त्रियों के लिए ईश्वर-भक्ति के उदाहरण के रूप में इस्तेमाल करना चाहता है। यह भी तभी सम्भव है जब वृद्ध जन पवित्र आत्मा के चलाए जीवन व्यतीत करना सीखें। यहां क्रीत की मंडली को महिलाओं के विषय में पौलुस द्वारा दिया गया निर्देश, वहां के अविश्वासी समाज में महिलाओं के प्रति किए जाने वाले असमानता के व्यवहार से बिल्कुल भिन्न था। वृद्ध स्त्रियों को मंडली में यह सीखना था कि उन्हें सम्माननीय, समझदार व मसीह के स्वभाव के अनुसार जीवन जीना है। उन्हें दूसरों के प्रति आदरणीय विचार-भाव रखना था। उन्हें परनिन्दक, बकवासी और पियक्कड़ (शाब्दिक अर्थ: मदिरा का गुलाम) नहीं होना था। इसके अतिरिक्त युवा स्त्रियों को वृद्ध स्त्रियों के ज्ञान-बुद्धि एवं भक्तिपूर्ण उदाहरण की आवश्यकता थी।

“जिस से वे युवा स्त्रियों को प्रोत्साहित करें कि वे अपने अपने पति व बच्चों से प्रेम करें, और वे समझदार, पवित्र, सुगृहणी, दयालु, पति के अधीन रहने वाली हों, जिससे कि परमेश्वर के वचन का निरादर न हो” (तीतुस 2:4-5)। यहां पौलुस यह कहता है कि युवा स्त्रियों के लिए वृद्ध स्त्रियां जीने का तरीका सिखाने वालों जैसी होनी चाहिए। चौथे, पांचवें, आठवें और दसवें पदों में स्त्रियों के

लिए तीतुस को दिए गये निर्देशों का उद्देश्य सुस्पष्ट है। वृद्ध स्त्रियों को अपनी शिक्षा एवं उदाहरण के द्वारा युवा स्त्रियों को यह प्रोत्साहन प्रदान करना है कि वे अपने पति व बच्चों से प्रेम रखें। मंडली की किसी महिला से यह पूछने पर कि क्या वह अपने पति व बच्चों से प्रेम रखती है, संभवतः सकारात्मक उत्तर ही मिलेगा (हालांकि ऐसे प्रश्न से उन्हें ठेंस भी पहुंच सकती है)। लेकिन आइए, अदन की वाटिका की घटना की ओर जरा ध्यान दें। पाप के परिणाम को दर्शाते हुए प्रभु परमेश्वर ने सर्प, शैतान और अन्ततः हव्वा (स्त्री) को सम्बोधित किया। स्त्री से परमेश्वर ने कहा, “तेरी लालसा तेरे पति के लिए होगी” (उत्प0 3:16)। इस वाक्यांश का शाब्दिक अर्थ है: ‘पति पर अधिकार चलाने की लालसा’। कहने का मतलब यह है कि **पाप में पतन** के पश्चात ‘स्वेच्छापूर्वक’ अपने पति के अधीन जीवन व्यतीत करने की नारी की स्वभाविक इच्छा में बिगाड़ आया और इबलीस की मानसिकता (अपने मन का राजा होना और किसी के अधीन व चलाए नहीं चलना) का बोलबाला।

बहुत सी मसीही महिलाओं का पति व बच्चों के प्रति दिखने वाला प्रेम, प्रायः स्वयं को परिस्थिति पर नियंत्रण रखने वाली या दूसरों के समक्ष अच्छा साबित करने वाली (विवशतापूर्ण) स्वार्थी नियत-भावना ही होती है। अतः जरूरत इस बात की है कि वृद्ध (मसीही विश्वासी) महिलाएं अपने जीवन में सीखी गई रचनात्मक एवं हितकारी बातों को मित्रवत् भावना में युवा स्त्रियों को बताएं (और प्रायः ऐसी बेशकीमती सीख कठिन मार्ग से ही सीखी गई होती है)। अफसोस यह है कि आज की मंडलियों में युवा स्त्रियों के लिए बहुत कम विश्वासी बुजुर्ग स्त्रियां अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करती

हैं। इसके साथ ही प्रायः यह भी देखने को मिलता है कि मंडली के वृद्ध सदस्यों को जो आदर-सम्मान मिलना चाहिए, वह नहीं मिलता। प्रायः लोग अपनी-अपनी उम्र के अनुसार समूहों में बंटे होते हैं। इससे यह संकेत जाता है कि शायद हम एक दूसरे से कुछ खास नहीं सीख सकते। जब कलीसिया के बाहरी समाज के प्रतिमान (उदाहरण) कलीसियाई प्रतिमान बनने लगते हैं तो यह कोई अच्छा संकेत नहीं होता। कलीसिया में उम्र के भेदभाव के बगैर एक दूसरे की देखभाल करने, एक दूसरे की सेवा करने, एक दूसरे की सहायता करने तथा एक दूसरे को शिक्षा-परामर्श देने का प्रोत्साहन मिलना चाहिए। इसीलिए कभी-कभी बाइबैलीय सच्चाईयों की व्यवहार्यता हेतु रसोईघर जैसे कार्य-स्थल बेहतर मंच साबित हो सकते हैं।

वृद्ध पुरुषों एवं वृद्ध स्त्रियों की तरह युवा स्त्रियों में भी आत्म-संयम होना जरूरी है। इन्हें अपनी अभिलाषाओं एवं इच्छाओं पर नियंत्रण रखना तथा अपने पति के अधीन जीवन व्यतीत करना (सीखना) जरूरी है। पत्नियों और माताओं को अपने घराने की ऐसी देखभाल करनी चाहिए कि अपने-अपने पति एवं बच्चों के प्रति सम्मानपूर्वक व स्नेहपूर्ण व्यवहार कर सकें (इफि0 5:22-24)। वैवाहिक एवं पारिवारिक सम्बन्धों के समुचित निर्वाह हेतु परिवार में किसी एक का अगुवा होना आवश्यक है। परमेश्वर ने पति को यह दर्जा दिया है। पत्नी को स्वेच्छापूर्वक अपने पति के नेतृत्व का अनुसरण करना चाहिए, और पति को मसीह का अनुयायी होना है तथा उसे यह नहीं भूलना है कि उसकी यह भूमिका प्रभु परमेश्वर की देन है (प0कुरि 11:3)।

अधीनता को समझने की कुंजी परिपक्वता है। 'अधीनता' का मतलब आज्ञाकारिता नहीं है बल्कि परमेश्वर प्रदत्त सम्बन्ध को स्वीकार करना 'अधीनता' है, अर्थात् अपने आपको स्वेच्छापूर्वक ईश्वरीय अधिकार-व्यवस्था (अधिकार-क्रम) के अधीन करना। यहां अधीनता का मतलब 'हीनता, अमहत्वपूर्ण या छोटा होना' नहीं है (गला0 3:28; इफि0 5:24; कुलु0 3:18; प0पत0 3:1, 5)।

जिस परिवार में पति-पत्नी दोनों विश्वासी हैं, वहां अधीनता की समस्या नहीं पैदा होनी चाहिए; क्योंकि दोनों को एक दूसरे के हित की चिन्ता होनी चाहिए (दू0कुरि0 12:15)। सच्चे नेतृत्व में सेवा-भावना होती है। अतः समझदार एवं मसीह का आदर-मान करने वाला पति अपने नेतृत्व-भूमिका रूपी अधिकार का (गलत) फायदा उठाने के बजाय, अपनी पत्नी की उसी भावना से ओत-प्रोत होकर प्रेमपूर्ण सेवा करेगा, जैसे कि मसीह ने अपने शिष्यों से प्रेम किया एवं उनकी सेवा की (यूह0 13:1-17)। प्रभु परमेश्वर की महिमा ही इन सब निर्देशों का उद्देश्य है। जब प्रभु के लोग धार्मिकतापूर्ण व अनिन्दनीय जीवन व्यतीत करते हैं, तब सुसमाचार के शत्रुओं को दोष लगाने का अवसर नहीं मिलता।

"इसी प्रकार युवकों को दृढ़तापूर्वक समझा कि वे संयमी बनें" (तीतुस 2:6)। यहां पौलुस ने युवकों को भी "संयम" में रहने की शिक्षा पर जोर दिया है। रोचक है कि युवाओं के बारे में सिर्फ इसी गुण पर जोर दिया गया है। अतः इस बात के मायने-मतलब को ठीक से समझना जरूरी है। यहां यह नहीं भूलना है कि "संयम" (स्वस्थचित्तता, गम्भीरता, शांत स्वभाव या संतुलित मनोभाव) शारीरिकता में हासिल नहीं हो सकता, क्योंकि शारीरिकता

का मूल स्रोत शैतान है, जो धोखेबाजी का उस्ताद है। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, गलातियों की पत्री के अनुसार "शारीरिकता तो पवित्र आत्मा के विरोध में और पवित्र आत्मा शरीर के विरोध में लालसा करते हैं"। किस लिए? मनुष्य के मन, इच्छा व आवेग (प्राण) पर अधिकार-नियंत्रण हेतु। अतएव शारीरिकता के विजयी होने पर "संयम" की उम्मीद नहीं की जा सकती। जब कोई विश्वासी पवित्र आत्मा के चलाए जीवन व्यतीत करता है और पवित्र आत्मा उसके मन-मस्तिष्क पर नियंत्रण रखता है, तभी वह व्यक्ति वास्तविक "संयम" में होगा (गला0 5:16-17)। पौलुस ने रोमियों तथा इफिसियों की पत्री में "मन के नये होने" और "मन के आत्मिक स्वभाव में नये" होने की बात कही है जिसे "संयम" भी कहा जा सकता है, जो कि "पुराने मनुष्यत्व के उतारे जाने" का परिणाम है (रोमि0 12:2; इफि0 4:22-23)। प्राचीन काल की तरह आज के युवकों में भी "संयम" का अभाव पाया जाता है। पति-पत्नी के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है। चाहे पत्नी के अपने पति की अधीनता में रहने की बात हो या पति द्वारा पत्नी के प्रति सहृदयतापूर्वक व्यवहार की बात हो, इन सब के लिए "संयम" बहुत महत्वपूर्ण है – और यह गुण केवल पवित्र आत्मा की अधीनता में जीवन बिताने पर विकसित होता है। जिस पति में आत्म-संयम नहीं है, उसे अपनी पत्नी से अधीनता (में नहीं रहने) के बारे में शिकायत करने का कोई अधिकार नहीं।

“भले कार्य कर के तू सब बातों में स्वयं आदर्श बन। तेरा उपदेश शुद्ध, गम्भीरतापूर्ण, खरा और दोषरहित हो, जिससे कि विरोधियों को हमारे विषय में कुछ भी बुरा कहने का अवसर न मिले और वे लज्जित हों” (तीतुस 2:7-8)। तीतुस को पौलुस इसलिए क्रीत की मंडली में छोड़ आया था कि वह तब तक वहां शिक्षा व शिष्यता की सेवकाई प्रदान करता रहे जब तक कि उनमें स्थानीय आत्मिक अगुवे नहीं तैयार होते। तीतुस को सिर्फ सत्य की शिक्षा ही नहीं देनी थी बल्कि उनके मध्य विश्वासियों के लिए एक अनुकरणीय उदाहरण होना था। उन्हें सिर्फ पवित्र आत्मा के चलाए चलने की तालीम ही नहीं देनी थी बल्कि तीतुस को उनके मध्य पवित्र आत्मा के अधीन जीवन व्यतीत करना था (प्रेरित 20:20)। पौलुस ने तीतुस को (जो कि स्वयं युवावस्था में था) कलीसिया के युवाओं के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत करने के लिए प्रोत्साहित किया। दोषरहित जीवन-आचरण बगैर, अधिकारपूर्ण उपदेश व शिक्षा बेअसर होती है। तीतुस की शिक्षा को खीप्त-समान (खीप्तीय) आचरण पर जोर देना था और उसकी जीवन-शैली को खीप्तीय जीवन का एक उदाहरण होना था।

पास्तरीय पत्रियों में पौलुस ने प्रायः “भले कार्य” पर जोर दिया है :

- (1) पहला तीमुथियुस (2:10) - स्त्रियों को अपने आप को “भले कार्यों से संवारने” की शिक्षा।

- (2) पहला तीमुथियुस (5:10) - विधवाओं को "भले काम करने में सुनामी" होने की शिक्षा।
- (3) पहला तीमुथियुस (6:18) - धनवानों को "भले कार्यों में धनी" होने की शिक्षा।
- (4) दूसरा तीमुथियुस (2:21) - पाप से शुद्ध किए गये मसीही कार्यकर्ताओं का "स्वामी के उपयोग और हर भले काम के लिए तैयार" किए जाने की शिक्षा।
- (5) दूसरा तीमुथियुस (3:17) - पवित्रशास्त्र द्वारा विश्वासियों का "प्रत्येक भले कार्य" के लिए तैयार किए जाना।
- (6) तीतुस (2:7) - युवकों को "भले कार्य कर के" दूसरों के समक्ष एक आदर्श होने की शिक्षा।
- (7) तीतुस (3:1) - ख्रीष्टीय लोगों को अपने समाज में "हर एक भले कार्य के लिए तत्पर" रहने की शिक्षा।
- (8) तीतुस (3:8, 14) - पौलुस ने यहां पुनः मसीही विश्वासियों को यह स्मरण कराते हुए प्रोत्साहित किया है कि उन्हें "भले कार्यों" और "अच्छे काम-धन्धे" में लगे रहना चाहिए।

तीतुस को जीवन-उदाहरण प्रस्तुत करने का प्रोत्साहन देने के बाद, पौलुस ने उसकी शिक्षा रूपी सेवकाई के बारे में लिखा: "तेरा उपदेश शुद्ध, गम्भीरतापूर्ण, खरा और दोषरहित हो" (2:7-8)। यहां "शुद्ध" शब्द में ईमानदारी का भाव निहित है, अर्थात् जिसमें बिगाड़ या मिलावट न हो। तीतुस की शिक्षा में शुद्धता होने का मतलब यह था कि उसे झूठे शिक्षकों से भिन्न होना था (दू0पत0 2:1-3)। इतना ही नहीं, शुद्धता और ईमानदारी का मार्ग अपनाने का मतलब क्रीतवासियों की जीवन-शैली के विपरीत जाना

था, क्योंकि झूठ बोलना उनकी जीवन-शैली का एक अंग था (तीतुस 1:12)। "गम्भीरता" का मतलब है पूरी ईमानदारी, सच्चाई व आदर से सिखाना; ताकि जो सिखाया जा रहा है उसके उद्देश्य को समझकर गम्भीरता व आदर-सम्मान के साथ सुना व ग्रहण किया जाए। तीतुस को पौलुस ने यह सलाह दी कि उसकी शिक्षा को दोष व आलोचना से रहित होना चाहिए। क्रीत की मंडली में तीतुस की इस खास भूमिका के कारण उसके जीवन-आचरण को ईश्वर-भक्ति (ईश्वरपरायणता) का एक विशिष्ट नमूना होना था। यहां सातवें पद का 'उपदेश या सब बात' शब्द यूनानी भाषा के लॉगोस शब्द से लिया गया है। इसे "वचन" शब्द के रूप में भी अनूदित किया जा सकता है। कहने का मतलब यह है कि परमेश्वर के अनुग्रह से तीतुस को बोलते या शिक्षा देते समय अपने शब्दों का चयन बड़ी सावधानीपूर्वक करना था, जिससे उसके विरोधियों को आलोचना व दोष लगाने का अवसर न मिले। ऐसा नहीं था कि तीतुस को विरोध का सामना नहीं करना पड़ा, बल्कि उसका जीवन-आचरण ऐसा (ईश्वरपरायणता का उदाहरण) होना था कि समस्त आलोचना (दोषारोपण) अनुचित प्रमाणित हो। उसकी उत्तम शिक्षा और उसकी उत्तम बातें उसकी ओर इंगित दोष व आलोचनाओं को नहीं रोकते; लेकिन दोष लगाने वाले तब लज्जित किए जाते जब उसके आदर्श जीवन द्वारा उनकी आलोचनाएं निराधार (झूठी) साबित होतीं।

"यह विश्वासयोग्य कथन है, और मैं चाहता हूं कि तू इन बातों के विषय में दृढ़ता से बोले कि जिन्होंने परमेश्वर पर विश्वास किया है, वे भले कार्यों में लग जाने का ध्यान रखें। ये बातें लोगों

के लिए भली और लाभदायक हैं” (तीतुस 3:8)। बहुत से विश्वासी परमेश्वर के अनुग्रह का गलत अर्थ लगाते हैं। वे यह सोचते हैं कि अब तो उन्हें ऐसा उद्धार प्राप्त है जिसे वह कभी नहीं खो सकते, अतः अब जैसा चाहें वैसा मनमौजी जीवन जी सकते हैं (गला0 5:13)। पौलुस ने तीतुस को यह निर्देश दिया कि क्रीत की मंडली के विश्वासियों को “भले कामों में लग जाने” के लिए प्रोत्साहित करे। यहां पौलुस ने यह नहीं सिखाया कि विश्वासी लोग अपने कर्म-प्रयास व इच्छा शक्ति द्वारा भले काम करने की कोशिश करें। बल्कि उसके कहने का अभिप्राय यह था कि विश्वासीजन जैसे-जैसे आत्मिक परिपक्वता में बढ़ेगा वैसे-वैसे उसमें **भले कार्यों** को करने की स्वाभाविक इच्छा होगी। मसीह के साथ क्रूसित होने की आत्मिक सच्चाई को जानने (रोमि0 6:6) से पूर्व हम केवल शारीरिकता के अनुसार जीवन जी रहे थे। अब हम मसीह में हैं। अब हमें उसका जीवन प्राप्त है। अब जब हम **विश्वासपूर्वक मसीह में प्राप्त पुनरुत्थान जीवन** में जीते हैं, तब शारीरिकता से छूटकर **भले कार्यों** में लगे रहने हेतु स्वतंत्र होते हैं। इफिसियों 2:8-10 में अनुग्रह के जीवन में विकसित होने में **भले कार्यों** की भूमिका का जिक्र है। याकूब 1:22; 2:14-25 तथा 3:13 में विश्वासियों के जीवन में **भले कार्यों** की केन्द्रीय भूमिका का उल्लेख है। परन्तु इस संदर्भ में महत्वपूर्ण बात यह है कि **भले कार्य** विश्वास के फल हैं और केवल **आत्मा** (के चलाए जीवन) में ही संभव हैं।

“परन्तु मूर्खता के विवादों, वंशावलियों तथा व्यवस्था सम्बन्धी झगड़ों व बखेड़ों से बचा रह, क्योंकि ये अलाभदायक और व्यर्थ हैं” (तीतुस 3:9)। बहुत से लोग अपनी शारीरिकता में कुछ ऐसी बातों

को बोल-सिखा कर स्वयं को विद्वान या ज्ञानी दर्शाते हैं, जो सत्य के अनुसार नहीं होतीं। यदि किसी व्यक्ति की शिक्षा 'मसीह तथा उसके द्वारा क्रूस पर संपन्न उद्धार-कार्य' पर केन्द्रित नहीं है तो ऐसी शिक्षा शरीर से है और उससे दूर रहने में ही भलाई है। ऐसी शिक्षा झगड़े, मतभेद और विभाजन ही पैदा करती है। इसीलिए पौलुस ने तीतुस व तीमुथियुस को अलाभकारी व मूर्खतापूर्ण विवादों से सतर्क व दूर रहने की सलाह दी (पौतीमु 1:4; 6:4; दूतीमु 2:14, 23)।

"विधर्मी मनुष्य को पहली व दूसरी चेतावनी देकर उस से अलग हो जा, और यह जान ले कि ऐसा मनुष्य पथ-भ्रष्ट हो गया है। वह अपने आप को दोषी ठहराकर पाप करता जाता है" (तीतुस 3:10-11)। इसी तरह की चेतावनी रोमियों की पत्नी में भी दी गई है (रोमि 16:17-20)। झूठे शिक्षकों के विवाद से दूर रहने के अलावा, तीतुस को पौलुस ने यह भी निर्देश दिया कि फूट पैदा करने वालों के साथ किस प्रकार पेश आए। बाहरी झूठे शिक्षकों से सतर्क व दूर रहना था, किन्तु मंडली के अन्दर फूट पैदा करने की कोशिश करने वाले (विश्वासी) व्यक्ति को समझाते हुए उसे चेतावनी देना था। चेतावनी का उद्देश्य उस व्यक्ति के विभाजनकारी आचरण में सुधार लाने और मंडली की संगति में बने रहने का अवसर प्रदान करना था। पौलुस के अनुसार, उस व्यक्ति के साथ नाता तोड़ने से पूर्व कम से कम दो बार चेतावनी या मौका देना जरूरी था। ऐसी प्रेमपूर्ण चेतावनियों के बाद भी किसी व्यक्ति द्वारा झूठी व विभाजनकारी शिक्षा का रास्ता नहीं छोड़ना उसकी बिगड़ी, भ्रष्ट व पापी मानसिकता का प्रमाण है

(देखें: मत्ती 18:15-18; दू०थिस्स० 3:14-15)। स्थानीय मंडली को प्रत्येक व्यक्ति के विचार या दृष्टिकोण को अपनाने मात्र के लिए अपने सिद्धान्त (डॉक्ट्रिन) में संशोधन या परिवर्तन करने के प्रति खबरदार रहना चाहिए। ऐसी परिस्थिति में किसी एक सदस्य द्वारा मंडली छोड़कर चले जाने का खतरा मोल लेना ज्यादा बेहतर विकल्प है, बजाय इसके कि हर प्रकार के उटपटांग शिक्षा-सिद्धान्तों वाली मंडली बनना।

इस श्रंखला की पुस्तकों का निम्नलिखित क्रम में अध्ययन ज्यादा लाभप्रद होगा :

1. उत्पत्ति और उद्धार की कहानी
2. सुदृढ़ आधार
3. परमेश्वर-कृत उद्धार
4. प्रेरितों के कार्य
5. वह मुझमें और मैं उसमें
6. रोमियों
7. इफिसियों
8. पहला कुरिन्थियों
9. पहला तीमुथियुस
10. तीतुस
11. पहला और दूसरा थिस्सलुनीकियों